

हिन्दी कविता में साम्प्रदायिक सद्भाव के स्वर**डॉ. अजय कुमार शुक्ल**

प्राध्यापक एवं विभागाध्यक्ष (हिन्दी)

कला एवं मानविकी संकाय

कलिंगा वि.वि. नया रायपुर (छ.ग.)

शोध सारांश:-

संपूर्ण विश्व के लिए साम्प्रदायिकता सबसे बड़ी चुनौती है। आज पूरी दुनिया धर्म, जाति, वर्ण आदि के श्रेष्ठताबोध में झुलस रही है। किसी भी समाज के लिए साम्प्रदायिकता एक नासूर की तरह है। जिसके कारण हजारों बेगुनाह असमय ही कालकवलित हो जाते हैं। किसी भी भाषा के साहित्य का मुख्य उद्देश्य मानवता, समरसता एवं सामाजिक सद्भावना स्थापित करना है। हिन्दी कविता में भी आदिकाल के प्रथम कवि सरहपाद से लेकर वर्तमान समय के कवियों ने अपनी कविताओं में साम्प्रदायिकता के खिलाफ तीखा प्रतिरोध किया है।

बीज शब्द:-

साम्प्रदायिकता, सामंतवाद, पूंजीवाद, हिन्दी कविता, धर्म, भय, प्रतिरोध के स्वर।

प्रस्तावना:-

साम्प्रदायिकता मानव विरोधी होता है। संकीर्णता से इसका जन्म होता है। राजनैतिक स्वार्थ, अशिक्षा और व्यक्तिगत लाभ प्राप्त करने के लिए प्रत्येक समाज में विघटनकारी तत्व मौजूद रहते हैं। जो धर्म, जाति एवं वर्ण के नाम पर मनुष्यों के मन में नफरत का जहर घोलने का काम करते हैं। हिन्दी कविता में शुरुआत से लेकर अभी तक की कविताओं में साम्प्रदायिकता के प्रतिरोध का स्वर दिखलायी पड़ता है। प्रस्तुत शोध पत्र में साम्प्रदायिकता की पृष्ठभूमि को स्पष्ट करते हुए हिन्दी साहित्य के विभिन्न काल में कुछ प्रमुख कवियों की कविताओं के माध्यम से साम्प्रदायिकता के विरुद्ध प्रतिरोध के स्वर का मूल्यांकन किया गया है।

साम्प्रदायिकता की जन्मभूमि:-

साम्प्रदायिकता का प्रश्न मानव सभ्यता के सामंतीकाल से ही समाज की विकास धारा के लिए रूकावट उत्पन्न करता रहा है। सामंती युग की शुरुआत भू-स्वामित्व और व्यक्तिगत सम्पत्ति की अधिकार भावना के साथ हुई थी। उस समय तक समाज में वर्ग विभाजन था। किंतु सामंतकाल में भू-स्वामी और भू-दास क्रमशः शोषक और शोषित वर्ग में विभाजित हो गये। दास प्रथा का आरंभ यही से हुआ। आदिम युग में प्राकृतिक शक्तियों

के भय से उत्पन्न रहस्यवादी आध्यात्मिक आस्था सामंतकाल में धर्म का रूप ले चुकी थी। और जो धर्म मनुष्य के भय परिष्कार का साधन बना हुआ था, वह समाज के शोषकवर्ग का आश्रय पाकर मनुष्य को भयभीत करने का माध्यम बन गया था।

श्रम विभाजन के आधार पर वर्गीकृत वर्ण व्यवस्था धीरे-धीरे उच्च और नीच जातियों के वर्गीकरण में विकसित होती गयी। इसके पीछे भी आर्थिक विपन्नता का आधार ही मुख्य था। उच्चवर्गीय जातियों ने धर्म की भाववादी व्याख्या करके उसे निम्नवर्गीय जातियों के शोषण का मुख्य हथियार बना लिया। इस प्रकार सामंतयुगीन समाज व्यवस्था पर उच्चवर्गीय जातियों का एकाधिकार हो गया और निम्नवर्गीय जातियों ने अपने शोषित होने की नियति को निर्विकल्प रूप से स्वीकार कर लिया। जाति और धर्म की यह संकुचित व्यवस्था ही साम्प्रदायिक दुर्भावना की जन्मभूमि है। सभ्यता के विकास के साथ-साथ साम्प्रदायिकता का यह बीज बिन्दु विभिन्न रूपों में प्रसार पाता गया और उसका स्वरूप भी जटिल से जटिलतर होता गया। इतिहास साक्षी है कि साम्प्रदायिक हठधर्मिता विशेषकर जाति और धर्म की कट्टरता ने समाज में अनेक विध्वंस-विप्लव उपस्थित किये हैं। जितने नरसंहार अकेले साम्प्रदायिक दुर्भावना ने कराये हैं उतने अन्य सभी कारणों ने मिलकर भी नहीं कराये।

हिन्दी कविता के आदिकाल में साम्प्रदायिकता के प्रतिरोध का स्वर:-

सामाजिक इतिहास में परस्पर विरोधी प्रवृत्तियों का द्वंद निरंतर गतिशील होता है। सामाजिक सहभागिता के स्तर पर रचनाकार भी इस संघर्ष में अपना रचनात्मक योगदान देता है। इसलिए प्रत्येक युग में सामाजिक गत्यावरोध के सभी पक्षों से रचनाकार को भी संघर्ष करना होता है। हिन्दी कविता में आरंभ से ही सामाजिक संरचना के रचनात्मक पक्षों की स्थापना के संघर्ष का स्वर मुखर रहा है। राहुल सांकृत्यायन ने सातवीं शताब्दी के सरहपाद को हिन्दी का प्रथम कवि माना है। सरहपाद चौरासी सिद्धों में से एक थे। उन्होंने भी हिन्दू समाज में व्याप्त बाह्याचार, पाखंड और साम्प्रदायिक प्रवृत्तियों पर चोट की है। वे ब्राह्मणों के तथाकथित ब्राह्मणत्व की खिल्ली उड़ाते हुए बहुत सटीक बात कहते हैं कि “ब्राह्मण ब्रह्मा के मुख से पैदा हुए थे, जब हुए थे, तब हुए थे, इस समय तो वे भी वैसे ही पैदा होते हैं, जैसे दूसरे लोग, तो फिर ब्राह्मणत्व कहाँ रहा? यदि कहो कि संस्कार से ब्राह्मणत्व होता है तो चाण्डाल को भी संस्कार देकर क्यों नहीं ब्राह्मण हो जाने देते?” सरहपाद की काव्य परम्परा का ही पल्लवन कबीर में हुआ है।

हिन्दी कविता के भक्तिकाल में साम्प्रदायिकता का प्रतिरोध:-

मध्यकाल में मुस्लिम आक्रांताओं के साथ भारत में इस्लाम का प्रवेश हुआ। अभी तक जितनी भी विदेशी जातियां यहां आयी थी। वे भारतीय संस्कृति की महाधारा में अपनी जातीय एवं सांस्कृतिक पहचान मिटाती गयी थीं। इसी अर्थ में रवीन्द्रनाथ टैगोर ने भारत को महामानवों का समुद्र कहा है। विशिष्टता के कारण हिन्दू धर्म और संस्कृति से अलग अपना अस्तित्व बनाये रखने में सफल हुआ। मुगल शासकों के लबे शासन काल में उसका

सुप्तप्राय हिन्दू समाज को विचलित कर दिया लेकिन वे भयभीत नहीं हुए बल्कि सजग व सचेत हो गये। फलस्वरूप काशी और मथुरा जैसे धार्मिक स्थानों में बड़े-बड़े मंदिरों के ध्वस्त किये जाने पर छोटे-छोटे मंदिरों की बाढ़ सी आ गयी तथा घर-घर में देवी-देवताओं की प्रतिमाएं प्रतिष्ठित हो गयी। यह एक सामूहिक जागृति थी जिसमें भक्ति आंदोलन के कवियों की भूमिका प्रमुख थी। इस काल में एक ओर जहां सामूहिक जागृति का रचनात्मक पक्ष सामने आया, वहीं धार्मिक साम्प्रदायिकता ने भी पर्याप्त प्रसार पाया। इस विसंगतिपूर्ण माहौल में संत और सूफी कवियों का स्वर आश्वस्त करता है जिन्होंने साम्प्रदायिक सौहार्द और समन्वय को स्थापित करने के लिए भरपूर संघर्ष किया।

संत काव्य परंपरा में कबीर का स्थान सर्वोपरि है। कबीर विभिन्न धर्मों सम्प्रदायों, मत-मतांतरों के ऊपरी खोल को उधारकर उसके भीतर की तात्विक एकता को सहज भाषा में लोक मन तक सम्प्रेषित करते हैं। वे जब राम और रहीम की एकता की बात करते हैं तो उनका मतलब भारतीय परंपरा के अद्वैत ब्रह्म और इस्लामी धर्म के पैगम्बरी खुदा के संविलयन से नहीं होता बल्कि वे मानते हैं कि यदि सृष्टि का रचयिता एक है तो दो की कल्पना व्यर्थ है। कबीर कहते हैं कि—

हमरे राम रहीम करीमा
कैसो अलह राम सति सोई
बिसमिल मेटि विसंभर एकै
और न दूजा कोई।

कबीर के राम दशरथ पुत्र राम नहीं, बल्कि राम उनके लिए अल्लाह, खुदा, रहीम-करीम आदि की ही भांति मात्र एक संबोधन है और इन तमाम संबोधनों का लक्ष्य सर्वशक्तिमान वह परमतत्व है जिसे किसी अमिधा-विशेष में नहीं बांधा जा सकता। इसीलिए कबीर कहते हैं— “अलह राम का गम नहीं, तहां कबीर रहा ल्यौ लाया” संत काव्य में साम्प्रदायिक सौहार्द की स्थापना की दिशा में कबीर के अलावा रैदास, दादूदयाल, गुरुनानकदेव, लालदास आदि का योगदान उल्लेखनीय है। इन संत कवि भक्तों के अनुयायी हिन्दू और मुसलमान, सवर्ण और अछूत सभी धर्म-वर्ग के लोग थे।

दरअसल मध्यकालीन सूफी काव्य, हिन्दू मुस्लिम धर्म और संस्कृति के समन्वय का प्रतीक है। सूफी काव्य ने तत्कालीन समाज में व्याप्त धार्मिक साम्प्रदायिकता के वातावरण में प्रेम, सौहार्द, सहिष्णुता एवं मधुरता की भावना का प्रसार किया। सूफी कवियों ने जहां इस्लाम की एकेश्वरवादी अवधारणा से संत काव्य को प्रभावित किया, जिससे हिन्दू धर्म की बहुदेववादी व्यवस्था के विरुद्ध मानसिकता बनाने में मदद मिली। वहीं उन्होंने भारतीय धर्म पद्धति और परंपरा प्रेम भक्ति, आराधना, गुणानुवाद आदि को इस्लामिक परंपरा से जोड़ा। इस दिशा में जायसी का ‘पद्मावत’ एक बेजोड़ प्रबंध काव्य है। समन्वय और अनुकरण की एक बानगी देखिए, जायसी ईश्वर के स्वभाव की अवर्णनीयता को रेखांकित करते हुए कहते हैं—

अति अपार करता कर करना, बरनि न कोई पारई बरना।
सात सरग जो कागर करई, धरती सात समुंद मस भरई।

सब लिखनी कई लिखि संसारू, लिखि न जाई गति समुंद अपारू।

तुलसी भी यही कहते है—

सब धरती कागज करूं, लिखनी सब बनराय,
सात समुंद की मसि करूं, गुरु गुन लिखा न जाय।

मध्यकालीन सगुण भक्तिधारा के कवियों में तुलसी की सामाजिक चेतना सर्वाधिक प्रखर है। वे भारतीय समाज ओर लोक मानस की नब्ज पहचानते है। तुलसी का समय विश्रुंखलता, अविश्वास, अनास्था और साम्प्रदायिक विवाद का समय है। हिन्दू समाज अपने भीतर ही कई टुकड़ों में बंटा हुआ था। शैव और वैष्णव मतावलंबियों में संघर्ष होता रहता था। तुलसी ने रामकथा को एक नया और व्यापक स्वरूप देकर उसे लोक मानस तक पहुंचाया। तुलसी की चौपाई लोककंठ से ध्वनित होने लगी। शैव-वैष्णव का विवाद इस प्रकार समाप्त हुआ कि जैसे कभी था ही नहीं। तुलसी में रामचरित मानस में शिव के मुंह से ही विष्णु अवतार राम की कथा कहलवायी और यह विधान किया कि शिव-द्रोही राम भक्त हो ही नहीं सकता—

सिव दोही मम भगत कहावा,
सो नर सपनेहूं मोहि न पावा,
संकर विमुख भक्ति चह मोरी,
से नारकी मूढ़ मति थोरी।
संकर प्रिय मम दोही, सिव दोही मम दास,
ते नर करहिं कलप भरो घोर नरक महं बास।

हिन्दी कविता के आधुनिककाल में साम्प्रदायिकता के प्रतिरोध का स्वर:—

भक्तिकाल के बाद रीतिकालीन हिन्दी कविता में सामाजिक सरोकार का पक्ष लगभग उपेक्षित रहा। 1857 की पहली क्रांति के बाद भारतेंदु युग में कविता में राष्ट्रीय भावना की अभिव्यक्ति सर्वोपरि रही। जिसमें साम्प्रदायिक सद्भाव का स्वर खुद-ब-खुद सम्मिलित था। द्विवेदी युग में राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त का काव्य अपनी पुनरुत्थानवादी प्रवृत्ति के बावजूद साम्प्रदायिक सद्भाव का मुखर प्रवक्ता बनकर आया। गुप्तजी एक एक ओर जहां हिन्दू समाज की संकीर्णता दूर करना चाहते है वही दूसरी ओर वे सम्प्रदाय के मनुष्यत्व की श्रेष्ठता निरूपित करते है—

रहो न हे हिन्दू संकीर्ण, न हो स्वयं ही जर्जर जीर्ण,
बढ़ो बढ़ाओ अपनी बांह, करो अछूत जनों पर छांह,
हिन्दू मुसलमान क्रिस्तान, परम पिता की सब संतान,
सभी बंधु है लघु या ज्येष्ठ, मन से मनुष्यत्व है श्रेष्ठ।

छायावादी कवियों में पंत निराला ने यत्र-तत्र साम्प्रदायिक सद्भाव को स्वर दिया है। पंत लोकायतन में जहां हिन्दू धर्म की प्रक्षेपित बुराइयों को रेखांकित करते है, वहीं अन्य

धर्मों के तात्विक महत्व को स्वीकारते भी है। इस्लाम का एकेश्वरवाद उन्हें आकर्षित करता है—

प्रिय कवि को नबी मुहम्मद,
एकेश्वर पर श्रद्धा—रत,
मानव समता के पोषक,
आस्था के पथ से तदमत।

इसी प्रकार 'ईसा की मानव—करुणा' में पंत को विश्व चेतना की उर्वर भूमि दिखती है—

नत था कवि—मन ईसा के सम्मुख,
जिसने जीवन प्रेम दिया जन को,
ममतामय सक्रिय मानव—करुणा,
स्वर्ग—राज्य भू—स्वप्न दिया मन को।

समकालीन हिन्दी कविता में साम्प्रदायिकता के प्रतिरोध का स्वर:—

धर्म के आधार पर देश के विभाजन के पश्चात् भारतवर्ष 1947 में स्वतंत्र हुआ। स्वतंत्रता के पश्चात् धार्मिक एवं साम्प्रदायिक कट्टरता तेजी से विकसित हुई। राजनैतिक स्वार्थ की वजह से राजनेता भी अपना हित साधने के लिए देश का ध्रुवीकरण की राजनीति करने लगे। साम्प्रदायिकता देश की प्रमुख समस्या बन गई। साम्प्रदायिकता की भावना भड़काकर सत्तापक्ष समाज में विभाजन करती रही। कात्यायनी लिखती हैं कि—

संदेह करने वालों को उम्रकैद,
तर्क करने वालों को फांसी,
अल्पमत पर बहुमत का धर्म राज्य,
नास्तिकों को सूली।

भगवत रावत जी का मानना है कि समाज में विभाजन करने वाली कुछ ताकतें मौजूद हैं। ऐसी ताकतें धर्म और जाति के नाम पर समाज को तोड़ रही हैं। इसलिए कवि ने साम्प्रदायिकता को अपनी कविता का विषयवस्तु बनाया है। कवि साम्प्रदायिकता पर व्यंग्य करते हुए कहते हैं कि—

मैं मुसलमान नहीं हूँ,
इन दिनों खुश होने के लिए,
यह क्या,
कोई कम बात है।

समाज में कुछ कट्टर साम्प्रदायिक संगठन अपने स्वार्थ के लिए धर्म का गलत इस्तेमाल करते हैं। धर्म के नाम पर लोगों में नफरत फैलाते हैं। परिणाम स्वरूप समाज में हिंसा और साम्प्रदायिक दंगे होते हैं। कवि मानवता का समर्थन करते हैं। उन्होंने लिखा है कि—

इतने—इतने संत, इतने उपदेशक,
इतनी कथा वार्ताएं, इतने गौरव गान,
इतना गाली—गलौज,
इतना धर्म—ईमान,
इससे पहले तो कभी हुआ नहीं।

इसी क्रम में विद्रोही कवि के रूप में प्रसिद्ध बांगल भाषा के कवि काजी नजरूल इस्लाम भी विभिन्न धर्म ग्रंथों की जगह मानवता की अलख जगाते हुए कहते हैं कि—

मनुष्य से घृणा करके,
कौन लोग कुरान, वेद, बाइबल चूम रहे है बेतहाशा ?
किताबें और ग्रंथ छीन लो जबरन उनसे,
मनुष्य को मारकर, ग्रंथ को पूज रहा है, ढोंगियों का दल,
सुनों मूर्खों,
मनुष्य ही लाया है ग्रंथ,
ग्रंथ नहीं लाया किसी मनुष्य को।

ऐसे साम्प्रदायिक वातावरण में भय का साम्राज्य व्याप्त है। मानवता की बात करने वालों को डराया, धमकाया जाता है। विभिन्न प्रकार की प्रताड़नाएं दी जाती है। मंगलेश डबराल इसी बात पर इशारा करते हुए कहते हैं कि—

भय का एक लोकतंत्र है,
और डर उपजाना, एक अलग रोजगार,
कुछ बोलने—लिखने, खाने—पीने—पहनने से पहले,
लगता है कोई है, जो हमें घूर रहा है,
सजाएं भी उतनी ही अनिश्चित है,
जो डराता है, उसकी कामयाबी,
इस डर को बनाये रखने में है।

साम्प्रदायिकता के विषाक्त वातावरण में सामान्य व्यक्ति का जीना मुश्किल हो जाता है। साम्प्रदायिक ताकतें शक्तिशाली हो जाती है। चारो तरफ दहशत का वातावरण फैलता चला जाता है। कवि, लेखक और बुद्धिजीवी इससे सबसे ज्यादा प्रभावित होते हैं। क्योंकि वह मानवता के धर्म को सर्वोपरि मानते है। कवि विष्णु खरे लिखते है कि—

कहो तो डरो कि हाय यह क्यों कह दिया,
न कहो तो डरो कि पूछेंगे चुप क्यों हो,
लिखो तो डरो कि उसके कई मतलब लग सकते हैं,
न लिखो तो डरो कि नई इबारत लिखाई जाएगी,
डरो तो डरो कि कहेंगे कि डर किस बात का है,
न डरो तो डरो कि हुक्म होगा कि डर।

उपसंहारः—

उपर्युक्त तथ्यों की विवेचना के पश्चात् समग्र रूप से यह कहा जा सकता है कि हिन्दी कविता की शुरुआत से लेकर वर्तमान समय की कविताओं में साम्प्रदायिकता के प्रतिरोध का स्वर सुनायी पड़ता है। सामंतकाल में शोषक वर्ग ने शोषित वर्ग के खिलाफ अपने निजी स्वार्थ के लिए धर्म का इस्तेमाल किया है। पूंजीवादी दौर में विभिन्न राजनैतिक दल अपना राजनैतिक स्वार्थ साधने के धर्म, जाति और वर्ण पर विभाजनकारी फैसलें लेती रहती है। इतिहास गवाह है कि साहित्यकारों ने अपनी रचनाओं के माध्यम से सदैव मानव मूल्य स्थापित करने और साम्प्रदायिक सद्भाव स्थापित करने का कार्य किया है। हिन्दी कविता के इतिहास का मूल्यांकन करने के पश्चात् यह निष्कर्ष निकलता है कि हिन्दी साहित्य के आदिकाल से लेकर समकालीन कविता के अनगिनत कवियों ने अपनी रचनाओं में साम्प्रदायिक सद्भाव स्थापित करने का भरसक प्रयास किया है।

संदर्भ सूचीः—

1. मैनेजर पाण्डेय – हिन्दी कविता का अतीत और वर्तमान, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।
2. असद जैदी/विष्णु नागर – यह ऐसा समय है, सहमत, नई दिल्ली।
3. असगर अली इंजीनियर – भारत में साम्प्रदायिकता : इतिहास और अनुभव, अनुज्ञा प्रकाशन, नई दिल्ली।
4. अभय कुमार दुबे – बीच बहस में सेक्युलरवाद, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।
5. सीताराम येचुरी – साम्प्रदायिकता, धर्म और मार्क्सवाद, मार्क्सवादी (वाल्सूम 10/नंबर 4)
6. डॉ. अजय कुमार शुक्ल – समकालीन हिन्दी कविता में लोकतात्विक प्रवृत्तियों का अध्ययन, शोध प्रबंध, गुरु घासीदास विश्वविद्यालय बिलासपुर (छ. ग.)।
7. डॉ. धर्मवीर भारती – मानव मूल्य और साहित्य, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
8. डॉ. रामकुमार मिश्र – साम्प्रदायिक सद्भाव के स्वर हिन्दी कविता में, देशबंधु – 05 अक्टूबर 1989.
9. कात्यायनी – इस पौरुषमय समय में, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।
10. भगवत रावत – ऐसी कैसी नींद, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।
11. लेव तोलस्तोय – युद्ध और शांति (वल्लभ सिद्धार्थ), संवाद प्रकाशन मेरठ, उत्तर प्रदेश।
12. माणिक/जितेन्द्र यादव – अपनी माटी, चितौड़, राजस्थान।

